

---

प्रवचन नं. ११९ गाथा-४६, दिनाङ्क २७-१०-१९७८, शुक्रवार  
आसोज कृष्ण ११, वीर निर्वाण संवत् २५०४

---

हिम्मतभाई! पहले जो कहा था न? रागादि अध्यवसान जीव के नहीं है - यह सर्वज्ञ ने कहा है; वहाँ संस्कृत में इतना शब्द प्रयोग किया है 'सकलज्ञ ज्ञप्ति' - इतना बस! और यहाँ व्यवहार में ऐसा प्रयोग किया है कि 'सकलज्ञैः प्रज्ञप्तं' कथन-कथनी। संस्कृत

में दोनों के शब्दों में अन्तर डाला है। क्या कहा, समझ में आया ? ज्ञप्तिः और प्रज्ञप्तं – यह दोनों में अन्तर डाला है कि आत्मा में राग नहीं है, वह पुद्गल है – यह सकलज्ञ-ज्ञप्तिः बतलाया कथन, कथन। ज्ञप्ति वचन है और रागादि जीव के हैं – ऐसा आगम में कहा है, वह ‘प्रज्ञप्तं’ कहा है – ऐसे शब्द में दोनों में जरा अन्तर है। यह अधिकार-४६ गाथा, बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

गाथा छयालीस। अब प्रश्न होता है कि अध्यवसानादि भाव अर्थात् क्या ? कि राग की एकताबुद्धि – ऐसा अध्यवसाय जो मिथ्यात्व और दया, दान का भाव जो राग, वे पुद्गल स्वभाव है... ऐसा तुमने कहा, तो सर्वज्ञ के आगम में उन्हें जीवरूप क्यों कहा गया है ? जीवरूप क्यों कहा गया है ? – ऐसा वजन है। उसमें वचन मात्र सर्वज्ञ ज्ञप्तिः वचन है उनका और यह है, वह कथन किया है, ऐसा दोनों में अन्तर है दोनों में।

श्रोता : कहने मात्र यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहनेमात्र ऐसा, बस यह है, जानने मात्र है; वस्तु है वास्तविक तो भगवान आत्मा...; शुभाशुभराग, वह चैतन्यस्वभाव नहीं; वह पुद्गल स्वभाव है, यह तो ‘सर्वज्ञेज्ञप्तिः’ इतना कहा है और यहाँ अब शिष्य कहता है कि तब अध्यवसानादि को आगम में जीवरूप क्यों कहा गया है ? है न ? जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी, उसके उत्तर की गाथा है।

व्यवहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।

जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा॥४६॥

हरिगीत-

व्यवहार ये दिखला दिया, जिनदेव के उपदेश में।

ये सर्व अध्यवसान आदिक, भाव को जँह जिव कहे ॥४६ ॥

इसकी टीका। शान्ति से... यह व्यवहार का अधिकार है, यह जाननेयोग्य है, यह न हो तो सब फेरफार हो जाए, इतनी बात कही। बन्ध भी व्यवहार से है; निश्चय से— परमशुद्ध में तो बन्ध भी नहीं और मोक्ष भी नहीं, आहाहा! परन्तु वर्तमान बन्ध रागादि का

सम्बन्ध है, वह व्यवहारनय का विषय है, वह जाननेयोग्य है; वह है ही नहीं कुछ-ऐसा नहीं है। आश्रय करने योग्य कौन है?—वह प्रश्न दूसरा। समझ में आया? आहाहा!

**श्रोता** - आश्रय करने का प्रश्न दूसरा अर्थात् क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री** - वह पहले कहा गया है। आत्मा ज्ञायकस्वरूप, ध्रुव, अखण्ड, अभेद, भूतार्थ वह आश्रय करनेयोग्य है। उसका आश्रय करनेयोग्य है। अथवा यह जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, उसमें 'अहंपना' माननेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा!

**श्रोता** : शास्त्र में तो ऐसा है कि भूतार्थनय के आश्रय से होता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री** : यह कहा न! भूतार्थ कहो या अखण्ड ज्ञायक कहो, सब अपेक्षा एक ही है। यह तो वह की वह बात आवे। कहा था - शब्द आया था बीच में, दोनों कहा था। अभी भी कहा था। अखण्ड कहो, भूतार्थ कहो, ज्ञायक कहो - सब शब्द अभी ही लिये थे। ख्याल नहीं रहा। एक त्रिकाली ज्ञायक है, प्रमत्त-अप्रमत्त पर्यायरहित चीज है। जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय भी जिसमें नहीं - ऐसा ज्ञायक—यह छठवीं (गाथा) की बात है। ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ कहा—ये सब शब्द अभी ही कहे थे, पहले कहे थे।

सत्यार्थ त्रिकाल जो ज्ञायकभाव-ध्रुवभाव, अकेला ज्ञायकस्वभावभाव अनन्त गुण का एकरूप—वही आश्रय करनेयोग्य है। आश्रय का अर्थ? वर्तमान पर्याय को वहाँ झुकाने योग्य है। यह भी एक अपेक्षित शब्द है। आहाहा! पर्याय पर लक्ष्य रखकर पर्याय को झुकानेयोग्य है—ऐसा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह वस्तु है, इसमें अहंपना—'यह मैं हूँ'—ऐसे इसे माननेयोग्य है। मानती है पर्याय-मानती है पर्याय, कार्य है पर्याय में परन्तु वह पर्याय ऐसा मानती है कि मैं त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव हूँ, वह मैं हूँ।

**श्रोता** : पर्याय अपने को द्रव्य माने।

**पूज्य गुरुदेवश्री** : हाँ, पर्याय स्वयं अपने को ध्रुव माने, यही वह है—'भूदत्थं अस्मिदो खलु' और वहाँ ३२० गाथा में भी ऐसा आया है। ३२० (गाथा) जयसेन आचार्य की टीका। ध्याता पुरुष ऐसा नहीं ध्याता कि मैं, खण्ड-खण्ड ज्ञान प्रगट है, वह मैं हूँ। आहाहा! ध्याता पुरुष किसे ध्याता और मानता है? ध्याता है अर्थात् ध्यान में उसका विषय क्या है? जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक

—परमभाव लक्षण निजपरमात्मतत्त्व / द्रव्य, वह मैं हूँ। आश्रय और अवलम्बन उसका है। परन्तु अब यहाँ पर्याय की बात है। (कोई) एकान्त ऐसा कहता है कि बन्ध और मोक्ष है ही नहीं, जीव में रागादि है ही नहीं... यह कहा न? वह तो निश्चय के स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से व्यवहार, जो रागादि इसमें है—पर्याय में; वे द्रव्य में नहीं, चैतन्यस्वभाव में नहीं— ऐसा कहा था। अब यहाँ कहते हैं कि इसकी पर्याय में है। व्यवहार भी जाना हुआ प्रयोजनवान है—१२ वीं गाथा। अब वह बात यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा! अटपटी बात है। आहाहा!

**टीका - यह सब अध्यवसानादि भाव..** सब अर्थात् आठ बोल लिये थे। आठ बोल हैं न? राग की एकताबुद्धि, वह अध्यवसाय; कर्म जो पर है, वह मेरे हैं—ऐसा भाव; इन सबको भिन्न कहा था। वे **जीव हैं ऐसा..** यहाँ अब अध्यवसानादि भाव—यह जो शुभभाव है या जो अशुभभाव है, वे जीव हैं पर्याय में; आहाहा! पर्याय, वह जीव है। द्रव्य—जीव वह त्रिकाल हैं, उसमें वे नहीं। अरे! ऐसी बात है। **ऐसा जो भगवान सर्वज्ञदेव ने कहा है..** देखा? भाषा 'प्रज्ञमं' बस! व्यवहारनय कथनमात्र (है)—ऐसा बहुत जगह आता है न? कथनमात्र अर्थात् जाननेयोग्य है। आहाहा! उसमें—पहले में कहा था वह तो भगवान ने—सर्वज्ञदेव ने शुभरागादि को पुद्गल का स्वभाव है—ऐसा कहा था। यह चैतन्य का स्वभाव जो है, उस स्वभाव में (रागादि) नहीं; पर्याय में है। यह प्रश्न अभी यह सिद्ध करते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी जो वस्तु, उसमें पर्याय में रागादि जो हैं, वे चैतन्य—स्वभावी नहीं, ऐसा कहकर वहाँ पुद्गलस्वभावी कहा था। इस परमार्थ का—स्व का आश्रय लेनेवाले को, उनका आश्रय लेने योग्य नहीं है; भेद का आश्रय लेने योग्य नहीं, तो राग का भी आश्रय लेने योग्य नहीं—इस अपेक्षा से जीव का चैतन्य स्वभाव, उसमें वे नहीं; आहाहा! वे पुद्गलस्वभावी है। ऐसे उस स्वभाव की / त्रिकाली स्वभाव की शक्ति की अपेक्षा से उन्हें चैतन्यस्वभाव नहीं, तो दया, दान के विकल्प, पुद्गलस्वभावी हैं—ऐसा कहा था। परन्तु कोई ऐसा ही मान ले कि उसकी पर्याय में रागादि ही नहीं.. वस्तु के चैतन्यस्वभाव में नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अब! इसमें निवृत्ति कहाँ.. गोदिकाजी! मार्ग ऐसा है, बापू! भाई! आहाहा!

भाषा कितनी, संस्कृत टीकाकार ने.. आहाहा! रागादि-पुण्यादि भाव जीव में नहीं है, पुद्गलस्वभावी है, वहाँ 'ज्ञप्ति' बस, सर्वज्ञ ने 'ज्ञप्ति' कहा है, बस इतना; और यहाँ रागादि इसके हैं—ऐसा जो आगम में कहा है, वह सर्वज्ञ ने कहा है; 'प्रज्ञप्तं।' उसमें 'ज्ञप्ति' इतना कहा, बस; यह 'प्रज्ञप्तं' कहा है, कहा है ऐसा। आहाहा! बाबूभाई! ऐसा मार्ग है। सूक्ष्म बहुत, बापू! कहो, नवरंगभाई! आहाहा! भगवान सर्वज्ञ ने वहाँ भी यह कहा था भगवान ने वहाँ कहा, ज्ञप्ति-बस! यह वचन है। यह राग—पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध भाव या मिथ्यात्वभाव—यह भगवान सर्वज्ञ ने कहा है कि यह 'जीव में है' – यह कहा है, वह व्यवहारनय का कथन है, वह व्यवहारनय का विषय है। कथन है परन्तु उसका 'वाच्य' इसमें है, इसकी पर्याय में रागादि है—ऐसा भगवान ने व्यवहार से कहा है। आहाहा! बहुत कठिन बात है। आहाहा!

**यद्यपि व्यवहारनय अभूतार्थ है..** देखा? यह शुभ-अशुभभाव-पूरी पर्यायमात्र को अभूतार्थ कहा है। आहाहा! त्रिकाली वस्तु की दृष्टि कराने को, ज्ञायक की दृष्टि और ध्येय वह है। दृष्टि का विषय गुणभेद या पर्याय या राग या निमित्त नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय वह ज्ञायकभाव अकेला पूर्णस्वरूप, जिसमें गुणभेद भी विषय नहीं, पर्याय विषय नहीं; राग तो नहीं और निमित्त तो नहीं। आहाहा! इतना कहकर उसे – त्रिकाली ज्ञायकभाव है, वहाँ दृष्टि को स्थापित कर। वह ध्यान में स्थापित होती है। आहाहा! इसमें स्थापित कर—ऐसा जहाँ विकल्प भी नहीं है। आहाहा! ऐसा जो कहा था वह तो स्व का-त्रिकाली का आश्रय लेने पर उसे सम्यग्दर्शन होता है परन्तु वह सम्यग्दर्शन पर्याय है, मोक्ष का मार्ग भी पर्याय है। यह पर्याय है, वह व्यवहार है। बन्ध है, वह भी व्यवहार है और बन्ध का छेद करना, वह भी व्यवहार है। व्यवहार से बन्ध छेद होता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं है। (बन्ध का) छेद तो इस त्रिकाली ज्ञान के आश्रय से ही होती है परन्तु बन्ध है और उसे छेदने का पर्याय में उपाय है। यदि उस उपाय को न मानो तो मोक्ष ही नहीं होगा। और बन्ध नहीं—ऐसा मानो तो बन्ध को छेदना और मोक्ष का उपाय भी नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

**व्यवहारनय अभूतार्थ है..** अर्थात् पर्याय और रागादि जो इसके कहे, वे वास्तव में तो असत्यार्थ हैं। त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा से भगवान ज्ञायकभाव वस्तु है, वह

सत्यार्थ है, वह भूतार्थ है। उसकी अपेक्षा से पर्यायमात्र को.. रागादि तो ठीक परन्तु पर्यायमात्र को गौण करके अभूतार्थ कहा गया है। (पर्याय) 'नहीं' कहकर अभूतार्थ ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

**यद्यपि व्यवहारनय अभूतार्थ है तथापि, व्यवहारनय को भी.. देखा ? 'भी' क्यों कहा ?** वह जो निश्चय से कहा था कि रागादि जीव के नहीं, इसकी पर्याय का भी आश्रय लेने योग्य नहीं, आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शन के विषय को बताते हुए भगवान पूर्णानन्द की जिसने श्रद्धा की उसे तो पूर्णानन्द का ही आश्रय / अवलम्बन है परन्तु अब यह लिया, व्यवहारनय 'भी', वह कहा न इसलिए यह 'भी' 'भी' तो कहा जा चुका है (और) वहाँ दूसरा यह भी.. आहाहा! व्यवहारनय भी दर्शाया-दर्शाया, दिखाया - ऐसा कहा। समझ में आया ? सूक्ष्म है, हसमुखभाई! यह तुम्हारे टाईल्स के धन्धे में कहीं मिले ऐसा नहीं धूल में भी वहाँ। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, उसका निश्चयस्वभाव क्या और पर्याय तथा राग का भाव क्या ? दोनों का यहाँ ज्ञान कराया। विषय तो त्रिकाली एक ही है परन्तु जो विषय करती है, ऐसी पर्याय उसमें है, राग उसमें है, है तो फिर राग का नाश करने का उपाय भी है, यह सब व्यवहार हुआ। व्यवहार से राग छेदा जाता है - ऐसा प्रश्न नहीं। छेदा तो द्रव्य के आश्रय से जो मोक्ष का मार्ग पर्याय हुई उसके आश्रय से, परन्तु त्रिकाली जो है, उसे निश्चय कहते हैं और मोक्षमार्ग पर्याय को व्यवहार कहते हैं। अभूतार्थ होने पर भी उसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा! अटपटी बात है। जैसे, **क्योंकि..** क्यों दर्शाया है कहते हैं, व्यवहार भी निश्चय के साथ वह भी दर्शाया है क्यों ? आहाहा!

**जैसे म्लेच्छों की म्लेच्छभाषा..** म्लेच्छों को, आहाहा! यह आठवीं गाथा में आ गया है। अनार्य को अनार्य भाषा में (उसे समझा सकते हैं।) इन कुन्दकुन्दाचार्य के समय अनार्य भाषा थी और अमृतचन्द्राचार्य के समय उसे म्लेच्छ भाषा हो गयी। समझ में आया ? जैसे भाषा अनार्य बिना न समझा सके, तब यहाँ तो म्लेच्छ को म्लेच्छों की— ऐसी भाषा जरा प्रयोग की है, इसलिए जरा हल्का काल हो गया। समझ में आया ? **म्लेच्छों की म्लेच्छभाषा...** वहाँ अनार्य भाषा अनार्यों को, मूल कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! **म्लेच्छों की म्लेच्छभाषा वस्तुस्वरूप बतलाती है..** बतलाती है। आदरणीय कौन है - यह प्रश्न यहाँ नहीं है।

उसी प्रकार व्यवहारनय.. व्यवहारनय अर्थात् म्लेच्छभाषा के स्थान पर, म्लेच्छों का अर्थात् व्यवहारी जीवों को.. आहाहा! म्लेच्छभाषा म्लेच्छों को उसी प्रकार व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को.. व्यवहारी जीवों को, आहाहा! परमार्थ का कहनेवाला है इसलिए.. परमार्थ को प्रगट कराता है इसलिए – ऐसा नहीं। परमार्थ का कहनेवाला है.. कि देखो, यह वस्तु। आहाहा! इसमें भी कहते हैं न बहुत कि देखो, इस व्यवहारनय के बिना परमार्थ नहीं ज्ञात होता, इसलिए व्यवहार से परमार्थ ज्ञात होता है। ऐसा नहीं, यहाँ। आहाहा! पहले वह भाषा की थी। चिमनलाल चकू है न, स्थानकवासी, स्थानकवासी में वहाँ वे यहाँ महीनों रहे थे, ९७ वें साल (में) कहे इसमें यह कहा है देखो कहते हैं व्यवहार के बिना परमार्थ प्राप्त नहीं होता। (कहा) ऐसा नहीं है। व्यवहार के बिना निश्चय ज्ञात नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ?

तथापि वहाँ—आठवीं गाथा में कहा है न व्यवहारनय से बतलाया है, परन्तु सुननेवाले को और कहनेवाले को वह व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है, जाननेयोग्य है परन्तु अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? गहन विषय है, भाई! यह तो निश्चय और व्यवहार दोनों हैं। परमार्थ को प्राप्त करानेवाला है—ऐसा नहीं परन्तु परमार्थ का कहनेवाला है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। किन्तु फिर भी व्यवहार से कहा परन्तु श्रोता को और कहनेवाले को वह व्यवहार अनुसरण करनेयोग्य नहीं है, जाननेयोग्य है। आहाहा!

श्रोता : बहुत स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को.. व्यवहारी जीव को (अर्थात्) पर्याय पर लक्ष्य है जानने का, उसे जीवों को परमार्थ का कहनेवाला है.. तत्त्व की वास्तविक स्थिति बतलानेवाला व्यवहारनय है। वास्तविक स्थिति व्यवहारनय से प्राप्त होती है.. वह अलग वस्तु है – ऐसा नहीं। व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को परमार्थ का कहनेवाला है इसलिए अपरमार्थभूत होने पर भी,.. देखो! कहा है, वह व्यवहारनय व्यवहारी जीवों को परमार्थ का कहनेवाला होने से, अपरमार्थभूत होने पर भी; परमार्थभूत द्रव्य है, उसे तो कहा, परन्तु इसे भी, परमार्थ भगवान त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु, वहाँ दृष्टि स्थापित कर तो तुझे सम्यग्दर्शन होगा। इसके बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता।

ऐसा परमार्थ जो कहा था, परमार्थ का स्वभाव बताया था, उसमें यह व्यवहार भी.. है न ? अपरमार्थभूत होने पर भी, धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए.. पर्याय में पर्यायपना प्रगट होता है, वह बतलाने के लिये। चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ ( गुणस्थान ) यह सब भेद है, पर्याय है, यह धर्मतीर्थ अर्थात् इनसे धर्मतीर्थ होता है – ऐसा प्रश्न नहीं, परन्तु यहाँ चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ – ऐसा जो पर्यायभेद है, उस पर्यायभेद को बतलाने के लिये.. आहाहा ! धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति के लिये अर्थात् ? इस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है चौथे, पाँचवें, छठे-ऐसी भेदवाली ( पर्याय है ) उसे, वह धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति है, परिणति है वह। समझ में आया ?

क्या कहा परन्तु यहाँ ? व्यवहार, परमार्थ को बतलाता है। व्यवहार, परमार्थ को प्राप्त कराता है – ऐसा नहीं है। बड़ा अन्तर है, बात ही यह अन्तर है न पूरा। धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति के लिये अर्थात् धर्मतीर्थ वह व्यवहार से होता है – ऐसा नहीं है। पर्याय का भेद है, उसे धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कहा है। वह पर्याय का भेद है न ? चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ... अरे ! चौदह गुणस्थान इत्यादि वह पर्याय का भेद है, वह तीर्थ की प्रवृत्ति है, वह तीर्थ / मोक्षमार्ग कैसे हो – यह बात यहाँ अभी नहीं है। वह तो द्रव्य के आश्रय से ही होता है, वह प्रश्न अलग बात है परन्तु यहाँ पर्याय के भेद वर्तते हैं,.. आहाहा ! वह धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति वर्तती है, आहाहा ! चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ ( गुणस्थान )। आहाहा !

**धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए..** अर्थात् कि, पर्याय का भेद है—यह चौथा, यह पाँचवाँ, यह छठवाँ-ऐसा बतलाने के लिये। **बतलाना न्यायसंगत ही है।** पर्याय में यह चौथा है, यह पाँचवाँ है, यह छठवाँ है, यह सातवाँ है – ऐसा बतलाना वह न्यायसंगत है। क्यों ? सम्यग्दर्शन, मोक्ष का मार्ग कैसे प्रगट होता है, यह अभी प्रश्न नहीं है। परन्तु प्रगट हुई पर्यायें जो हैं, उन्हें बतलाना है कि देखो, यह है, यह है, यह है। कहो, प्रवीणभाई ! ऐसा है। यहाँ तो कहा था धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए अर्थात् मोक्ष के मार्ग की परिणति करने के लिये अर्थात् जो परिणति होती है ] उसे बतलाना है, वह व्यवहारनय बतलाता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! ( व्यवहारनय ) **बतलाना न्यायसंगत ही है।** बतलाना, जानना वह न्यायसंगत है – ऐसा कहते हैं। जाननेयोग्य है, वह तो न्यायसंगत है। आदरणीय है या कैसे, यह प्रश्न यहाँ अभी नहीं है। आहाहा !



अब लोगों को ऐसी निवृत्ति / फुरसत कहाँ है ? बेचारे चढ़ गये व्यवहार में यह दया, दान, व्रत, तप और भक्ति करो, ऐसा कौन समझना चाहता है ? धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति व्यवहार से होती है, इसलिए व्यवहार करो ।

**श्रोता :** धर्मतीर्थ नहीं चलेगा ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** और धर्म तो स्व के आश्रय से होता है, उसकी परिणति का भेद बतलाना है कि परिणति ऐसी-ऐसी है, वह बतलाना न्यायसंगत है । बाबूभाई ! आहाहा ! ऐसा है ।

**परन्तु यदि व्यवहारनय न बताया जाये तो,..** आहाहा ! ये पर्याय के भेद हैं, वे नहीं ही हैं,.. नहीं बतलाये जायें, दर्शाये जायें,.. उसमें राग है – ऐसा सम्बन्ध-बन्ध है – ऐसा न बतलाया जाये,.. वह राग है, उसे छेदने का उपाय है, वह भी व्यवहार है – ऐसा न बतलाया जाये... उपाय कैसे प्रगट होता है – यह प्रश्न अभी (यहाँ) नहीं है। वह तो निश्चय के आश्रय से ही है । आहाहा ! **परन्तु यदि व्यवहारनय न बताया जाये तो, परमार्थ से..** परमार्थनय से शरीर से जीव को भिन्न बताया जाने पर भी,.. परमार्थ से तो जीव और शरीर भिन्न हैं । आहाहा ! निश्चय में तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी नहीं – ऐसा कहते हैं । आत्मा नैमित्तिक, शरीर निमित्त; शरीर नैमित्तिक आत्मा की पर्याय निमित्त, हों ! पर्याय । वह परमार्थ में तो है ही नहीं । यह जरा कठिन है, इसलिए धीरे से कहा जाता है न ? है ? यह कोई एकदम... आज फिर सब आये हैं मौके से । यह समझने जैसा है । गोदिकाजी ! आहाहा !

**परमार्थ से शरीर से जीव को भिन्न बताया जाने पर भी, जैसे भस्म को मसल देने से हिंसा का अभाव है उसी प्रकार, त्रसस्थावर जीवों को निःशंकतया..** यहाँ वजन कहाँ है कि त्रस और स्थावर के जीवों को और शरीर को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, यदि वह न माना जाये.. समझ में आया ? व्यवहार है न इतना । **निःशंकतया मसल देने-कुचल देने ( घात करने ) में भी..** निःशंकरूप से, मैं शरीर का नाश नहीं करता, शरीर और जीव दोनों इकट्ठे हैं, उनका मैं नाश करता हूँ, इससे दूसरों का नाश कर सकता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं है और दूसरे को जिला सकता है, यह यहाँ प्रश्न नहीं है । यहाँ तो शरीर और आत्मा अत्यन्त भिन्न हैं, उन्हें निमित्त-निमित्त सम्बन्ध भी नहीं है, तब तो त्रस स्थावर को

मसल डालने का जो निःशंकभाव है, निःशंक से उसे मार डालूँ, यह भाव झूठा है, यह भाव रहता नहीं। आहाहा!

शरीर निमित्त है, नैमित्तिक जीव की पर्याय है और जीव की पर्याय निमित्त है तथा शरीर की पर्याय नैमित्तिक है—ऐसा व्यवहार सम्बन्ध है। यदि ऐसा व्यवहार न होवे तो निःशंकरूप से जैसे त्रस स्थावर को मार डालने में, मसल डालने में कोई निःशंकपना, उसे कुछ है ही नहीं, जीव है ही नहीं। जीव और शरीर को कोई सम्बन्ध है ही नहीं..

**श्रोता :** जीव मरता कहाँ है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मरने का प्रश्न कहाँ है ? यह तो निःशंकरूप से दोनों का सम्बन्ध ही कुछ नहीं तब तो उसे मसल डालने में—जीव को मार डालना कुछ रहता नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** हिंसा रहती नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आज गाथा जरा ऐसी है। आज सब आये हैं। आहाहा! सब बात सच्ची। ऐसी बात बापू! बहुत कठिन है, अभी तो बहुत गड़बड़ उठी है। आहाहा!

**श्रोता :** आपने गड़बड़ समाप्त कर दी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह भाई, सुना था न भाई! पण्डितजी! श्रुतसागर ने बाहर प्रकाशित किया है, पढ़ा नहीं होगा? श्रुतसागर, जो धर्मसागर के साथ थे। शान्तिसागर की परम्परा के, उन्होंने बाहर प्रकाशित किया है कि अभी पंचम काल में शुभयोग ही होता है। ए.. रंगूलालजी! श्रुतसागर नहीं?

**श्रोता :** मैं जानता हूँ, मालूम है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धर्मसागर की परम्परा में आये। शान्तिसागर वीरसागर, शिवसागर, और धर्मसागर और धर्मसागर में साथ थे परन्तु उन्हें कुछ यह पढ़ा, आचार्यपद नहीं दिया तो अलग पढ़ गये। उन्होंने अभी बाहर समाचार-पत्र में प्रसिद्ध किया है। ज्ञानचन्दजी! पढ़ा है या नहीं?

**श्रोता :** जैनगजट में....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहीं आया है, ख्याल नहीं, जैनगजट में होगा। अभी पंचम काल

में शुभयोग ही है और वह शुभयोग जैसे 'अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण में जैसे निर्जरा होती है, वहाँ शुभभाव है, वहाँ शुद्ध नहीं; इसलिए शुभभाव में ही निर्जरा है। ऐसा, भाई! आया है। पढ़ा है या नहीं? पढ़ने जैसा है, भले उनने स्पष्ट किया। दूसरा जो गड़बड़ चलती है, वह करते हुए इन्होंने स्पष्ट किया कि भाई अभी शुभयोग ही होता है, उन्हें जो भासित हुआ इतना स्पष्ट किया न, उसने बेचारे ने।

**श्रोता :** उंधाई का स्पष्टीकरण किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कि शुद्धता अभी होती ही नहीं पंचम काल में, शुभभाव, शुभयोग ही सब होता है। आहाहा!

**श्रोता :** अभी शुभयोग से धर्म होता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उस शुभयोग से निर्जरा होती है - ऐसा कहना है न? कहा न? उस-अनिवृत्तिकरण का दृष्टान्त दिया है न? पण्डितजी! अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण होते हैं न? अपूर्वकरण में जिन कहा है। अभी अपूर्वकरण है, तथापि वह शुद्धात्मा के सन्मुख हुआ, इससे जरा शुभभाव है। मिथ्यात्वी है परन्तु समकित के सन्मुख है किन्तु फिर भी सन्मुख हुआ न, इस अपेक्षा से जरा अपूर्वकरणवाले को भी जिन कहा है, वहाँ तो यह ऐसा लेते हैं कि देखो, वहाँ शुभयोग है, अभी शुद्ध तो हुआ नहीं, शुभ से निर्जरा है न? इसलिए हमारे शुभयोग में भी निर्जरा है। अरे! प्रभु! क्या करता है बापू! भगवन्त! आहाहा! भगवान है भाई! भाई! आहाहा! यहाँ तो शुभभाव जीव में नहीं—ऐसा सिद्ध किया है और अब यहाँ पर्याय में है, इतना सिद्ध करना है। है इतना; उससे लाभ होता है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। बात समझ में आती है? (है,) बस है इतना, अस्ति सिद्ध करनी है।

**मुमुक्षु :** सत्ता सिद्ध की है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** त्रिकाल के अस्तित्व में भगवान ज्ञायकस्वभाव का भाव जहाँ है अकेला, वहाँ तो राग भी नहीं है, पर्याय भी नहीं है और वहाँ तो जो श्रद्धा करती है पर्याय, वह भी वहाँ उसमें नहीं है। पर्याय भिन्न रहकर उसकी श्रद्धा करती है, आहाहा! तो यहाँ शुभयोग-व्यवहार से लाभ हो, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। लाभ तो चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का

नाथ निश्चय ध्रुव चैतन्य के आश्रय से, उसके अवलम्बन से उसका साक्षात्कार होने से लाभ होता है परन्तु उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन का विषय तो गुणभेद भी नहीं और पर्याय भी नहीं, तो राग तो विषय कहाँ आया ? परन्तु कहते हैं राग विषय नहीं है, तथापि पर्याय में राग है – ऐसा उसे जानना चाहिए। आहाहा! आहाहा! समझ में आया ? वह शुभयोग है, इसलिए व्यवहार है और व्यवहार है, इसलिए उससे प्राप्त होता है, यह प्रश्न यहाँ नहीं। आहाहा! अरेरे! ऐसा है।

**श्रोता :** जरा कठिन तो है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसीलिए तो धीरे-धीरे लिया जाता है। सब आये हैं ये पण्डित, सेठिया आये हैं ये। बापू! यह धीरे-धीरे समझने जैसी बात है, बापू! यह कोई पक्ष की बात नहीं, यह तो तत्त्व की बात है। अभी तो जगत को कठिन पड़ती है। आहाहा!

जब ऐसा कहा कि रागादिभाव जीव के नहीं, जीव स्वभाव नहीं; वह तो पुद्गल-स्वभाव है। किस अपेक्षा से ? क्योंकि वे स्वभाव में नहीं और वे निकल जाते हैं, इस अपेक्षा से दृष्टि के विषय को सिद्ध करने को, उसका विषय तो वे नहीं परन्तु उसकी पर्याय में राग भी नहीं, वहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है। जीव का स्वभाव नहीं न ? स्वभाव कहा है न वहाँ ? चैतन्य में, ऐसा नहीं लिया, वहाँ चैतन्यस्वभाव में वे नहीं ऐसा है। इसलिए चैतन्यस्वभाव का त्रिकाली ज्ञायक अनन्त गुणों का पिण्ड वह तो अनन्त गुण तो स्वभाव शुद्ध है। अनन्त गुण में कोई ऐसा एक भी गुण नहीं कि विकार करे !

क्या कहा ? अपरम्पार गुण हैं, जिनका अन्त नहीं। यह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अन्तिम यह अनन्त – ऐसा है ही नहीं और इस अन्तिम अनन्त में अन्तिम यह, आहाहा! इतने सब अनन्त.. अनन्त के गुण में कोई गुण ऐसा नहीं कि विकार करे। आहाहा! इसलिए उसके जीवस्वभाव में राग, वह पुद्गलस्वभाव कहकर उसमें ( जीव में ) नहीं – ऐसा कहा परन्तु जब इसकी पर्याय का ज्ञान कराना है.. आहाहा! समझ में आया ? सूक्ष्म पड़े, थोड़ा विचारना। आहाहा!

यदि शरीर और जीव अत्यन्त भिन्न हों, निमित्त-निमित्त सम्बन्ध ( भी ) न हो, तब तो जैसे भस्म को मसल देने से हिंसा का अभाव है.. क्योंकि भस्म में कोई जीव का

निमित्तपना या नैमित्तिकपना उसमें है नहीं। समझ में आया? आहाहा! निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, वह व्यवहार है। वह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध ही यदि न हो, तब तो जैसे भस्म को मसल दे और शरीर को मसल दे, दोनों एक हो गया, आत्मा साथ है उसे मैंने मार डाला। ऐसा कि यह नहीं आवे। अरे! ऐसी बातें हैं। आहाहा! विशेष न समझ में आये तो रात्रि को प्रश्न करना। देखो! हमारे हुकमचन्दजी आये हैं, हमारे यह ज्ञानचन्दजी हैं, दोनों का प्रभावना में बड़ा भाग है, और तीसरे हमारे ये हैं बाबूभाई हैं। आहाहा! मार्ग प्रभु का ऐसा है, भाई! आहाहा!

व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है—जो बारहवीं (गाथा में) कहा है न, वह यहाँ सिद्ध करते हैं। है या नहीं? जानने का विषय है या नहीं? व्यवहारनय है, नय है तो विषयी है, तो उसका विषय है या नहीं? आहाहा!

परमार्थ से ( -निश्चयनय से ) शरीर से जीव को भिन्न बताया जाने पर भी, जैसे भस्म को मसल देने से हिंसा का अभाव है उसी प्रकार, त्रसस्थावर जीवों को निःशंकतया मसल देने-कुचल देने ( घात करने ) में.. क्योंकि शरीर और जीव एक ही है, भिन्न है नहीं—ऐसा मानकर उसे मर्दन करने में हिंसा का अभाव ठहरेगा और इस कारण बंध का ही अभाव सिद्ध होगा;.. हिंसा का भाव है, वह बन्ध है। इसलिए शरीर को मसल देने में जैसे कुछ नहीं; वैसे शरीर और जीव एक ही है, भिन्न नहीं हो और एक ही माने,.. व्यवहारनय तो निमित्त-निमित्त सम्बन्ध के कारण एक ही कहे। तो उन्हें मसल डालने में भी जीव को कोई नुकसान नहीं होता और निःशंकरूप से उसे मसल दे उसे कुछ पाप नहीं.. आहाहा! प्रभु का मार्ग अलौकिक है बापू! आहाहा!

व्यवहारनय का विषय है। नय है तो उसका विषय है, वह कथनमात्र है, होने पर भी.. व्यवहारनय को कथनमात्र कहा है। यहाँ ऐसा कहा न 'प्रज्ञप्तं' कलश-टीका में है। यह कलश-टीका है न? व्यवहारनय... पाँचवाँ श्लोक है न? व्यवहारनय, देखो! व्यवहारनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हंत हस्तावलंबः। वहाँ व्यवहारनय हस्तावलंबः अपिस्याद-व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन-कथन। यहाँ प्रज्ञप्तं, कैसी शैली है देखो तो! व्यवहारनय अर्थात् कथन। जीव वस्तु निर्विकल्प है, वह ज्ञानगोचर है, वह जिस वस्तु को

कहना चाहता है तो ऐसा ही कहने में आवे जितने गुण—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह जीव । बहुत साधिक कहना चाहे तो भी ऐसा ही कहना पड़े । ज्ञान-दर्शन-चारित्र वह आत्मा । ऐसा भेद से कहा । व्यवहार से कहा, कथनमात्र से कहा । आहाहा ! राजमलजी ने बहुत अच्छी टीका की है । उसमें आता है न ? द्रव्यसंग्रह में आता है - द्रव्यसंग्रह ! व्यवहारनय अर्थात् लौकिकमात्र । भाई ! द्रव्यसंग्रह में ( आता है ) व्यवहारनय अर्थात् लौकिकमात्र, 'लोक मूके फोक' ऐसी बात करता है-कहते हैं, परन्तु जानने लायक है, कहते हैं । द्रव्यसंग्रह में है । शुरुआत में, व्यवहार की व्याख्या की है न, वहाँ ( है ) । आहाहा !

यहाँ ( कलश टीका ) व्यवहार कथनमात्र कहा, यहाँ व्यवहार प्रज्ञसं कहा । आहाहा ! अब ऐसी बात ! यह तो ( अज्ञानी ) कहते हैं दया पालो, व्रत करो हो गया जाओ । यह पैसा खर्च किये-कोई पाँच-पच्चीस लाख, गजरथ निकालो.. धूल में भी नहीं कुछ वहाँ, सुन न ! आहा ! वहाँ इसका भाव होवे तो शुभ है परन्तु उस शुभ का ज्ञान किसे होता है ? जिसे शुद्धता का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन आदि प्रगट हुआ है, उसे पर्याय में शुभ है, उसका ज्ञान उसे होता है । आहाहा ! भाई ! ऐसा है । इस गाथा में-अर्थ में बहुत गड़बड़ करते हैं । पता है न ! देखो, यह व्यवहार कहा । 'कि देखो ! यह व्यवहार परमार्थ को प्राप्त कराता है... ये कहाँ कहा है बापू ? वह तो परमार्थ का यह स्वरूप अभेद है, उसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र से बतलाना, वह भेद है, वह व्यवहार का कथन है । आहाहा !'

हिंसा का अभाव ठहरेगा और इस कारण बंध का ही अभाव सिद्ध होगा;..— एक बात । दूसरी तथा परमार्थ के द्वारा जीव राग-द्वेष-मोह से भिन्न बताया जाने पर भी,.. परमार्थ से तो भगवान ने ऐसा कहा कि राग-द्वेष-मोह से तो भगवान भिन्न है । 'रागी, द्वेषी, मोही जीव कर्म से बँधता है, उसे छुड़ाना - इस प्रकार मोक्ष के उपाय के ग्रहण का अभाव हो जाएगा..' क्योंकि जब परमार्थ से राग-द्वेष-मोह से जीव भिन्न बतलाया गया है, उसे राग-द्वेष-मोह पर्याय में है ही नहीं, ऐसा यदि माने, है ? परमार्थ के द्वारा जीव राग-द्वेष-मोह से भिन्न बताया जाने पर भी, 'रागी, द्वेषी, मोही जीव कर्म से बँधता है.. बँधता है, ऐसा पहले तो कहा, हिंसा में, बन्धभाव । अब उसे छुड़ाना - इस प्रकार मोक्ष के उपाय के ग्रहण का अभाव हो जाएगा.. क्योंकि राग है बन्धन है; वह है नहीं तो उसका अभाव करने की पर्याय है वह भी 'नहीं' सिद्ध होगी । क्योंकि अभाव करना वह

भी पर्याय है, बन्ध भी पर्याय है और उसका अभाव का मोक्षमार्ग, वह भी पर्याय है, वह व्यवहार है। आहाहा! आहाहा!

जब परमार्थ से राग, द्वेष, मोह से भिन्न कहा गया है और यदि ऐसा ही हो तो पर्याय में बन्ध है, वह सिद्ध नहीं होगा। वह तो वस्तु की दृष्टि से कहा परन्तु पर्याय में उसका राग-द्वेष-मोह नहीं, तब तो राग-द्वेष-मोह से छूटना अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से उनका नाश करना, वह उपाय रहता नहीं। आहाहा! व्यवहार है, राग-द्वेष-मोह है, इसलिए छेदने का उपाय—मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय है। अतः यदि बन्ध की पर्याय नहीं तो मोक्ष की पर्याय भी वहाँ है नहीं। ऐसा इसे ऐसा हुआ। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय भी व्यवहार है। त्रिकाली ज्ञानवस्तु है, वह निश्चय है। आहाहा! बन्ध और मोक्ष वह जीव में कहना, यह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! दृष्टि तो इस बन्ध मोक्ष की पर्याय को स्वीकार नहीं करती। आहाहा! पर्याय है न? दो भेद पड़े न? समझ में आया?

ऐसा नहीं स्वीकारती, तथापि यदि बन्ध-मोक्ष जो पर्याय में न हो तो बन्ध नहीं तो छेदने का उपाय भी नहीं, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पर्याय है, उससे उस बन्ध का नाश होता है, वह पर्याय सिद्ध नहीं होगी, बन्ध सिद्ध नहीं होगा। आज का सूक्ष्म तो है। ए...ई... गोदिकाजी! तुम्हारी बहियों में यह कुछ वहाँ नहीं आता। तुम्हारे सेठ के नामा में कहाँ था यह कोई नामा? आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? कहते हैं कि मैं हूँ तो त्रिकाली ज्ञायक चैतन्य, परन्तु अब तेरी पर्याय में कुछ है या नहीं? या पर्याय में राग ही नहीं? राग है, ऐसा जानना चाहिए और राग को छेदने का उपाय.. यदि राग नहीं तो राग को छेदने का उपाय भी नहीं आता। अतः उसे जानना चाहिए कि राग है, उसे मोक्ष के मार्ग की पर्याय से बन्ध की पर्याय का नाश होता है, दोनों व्यवहार है। समझ में आया? बहुत पहलू, ऐसे कितने याद रखना, कहते हैं। आहाहा!

**‘रागी, द्वेषी, मोही जीव कर्म से बँधता है, उसे छुड़ाना - इस प्रकार मोक्ष के उपाय के ग्रहण का अभाव हो जाएगा.. आहाहा! मोक्ष का उपाय करना, उसका अभाव होगा। मोक्ष का उपाय किसके आश्रय से होता है, वह दूसरी बात है। वह तो निश्चय / द्रव्य के आश्रय से होता है परन्तु इस पर्याय में मोक्ष का उपाय होता है। यदि बन्ध नहीं तो उपाय**

कहाँ से आया ? बन्ध भी व्यवहारनय है और मोक्ष का उपाय भी व्यवहारनय है। अरे! मोक्ष स्वयं व्यवहार है। यह दो भेद की अपेक्षा से, हों! बाकी तो सिद्ध में व्यवहार नहीं—ऐसा आता है न? परमार्थ वचनिका में। परमार्थ वचनिका है न? उसमें आता है। यहाँ तो चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धपना कहना, फिर वहाँ सिद्ध में व्यवहार कहना नहीं। पूर्ण दशा हो गयी न! परमार्थ वचनिका में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं रागी, द्वेषी, मोही—परतरफ की जितनी सावधानी है, वह कर्म से बँधता है, उसे छुड़ाना अर्थात् मोक्ष के उपाय के ग्रहण का अर्थ छुड़ाना। उस मोक्ष के उपाय के ग्रहण का अभाव होगा। व्यवहारनय का विषय है। पर्याय में राग है, उसे छुड़ाने का उपाय भी है। व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! नय है न? नय है तो वह तो विषयी है तो उसका विषय होगा न? निश्चयनय है, वह विषयी है तो उसका विषय त्रिकाली ज्ञायकभाव है। समझ में आया ?

यह प्रश्न चला था, हमारे बहुत वर्ष पहले—८३, ८३, ८३ अभी कितने वर्ष हुए ? ५१। हुकमीचंदजी के जन्म से पहले, इन्हें ४१ चलता है, उसके दस वर्ष पहले, ऐसा प्रश्न चला कि मिथ्यादृष्टि हो, वहाँ तक मूर्ति की पूजा होती है - ऐसा प्रश्न चला। स्थानकवासी थे न! फिर एक सेठ थे। सम्यग्दर्शन होने के बाद पूजा और मूर्ति ऐसा नहीं होता प्रतिमा को, तब मैंने कहा, सुनो, सुनो! कहा उन्हें तो नहीं जँचे, वे तो अभिमानी थे परन्तु दूसरे लोगों को कहकर उनके द्वारा बात पहुँचायी। कहा—जब सम्यग्दर्शन होता है, तब उसके साथ भावश्रुतज्ञान होता है। भावश्रुतज्ञान होने पर उसके दो भेद पड़ते हैं निश्चय और व्यवहार; अतः जो भावश्रुतज्ञानी है, उसे व्यवहार आता है, व्यवहार विकल्प होता है, तब उसे ज्ञेय का जो भेद है—नाम, स्थापनाभेद उस ज्ञान का भेद नय है और ज्ञेय का भेद स्थापना है। इसलिए वास्तव में तो श्रुतज्ञानी को ही व्यवहारनय का विषय होता है। तुम एकदम उड़ा दो, ऐसा नहीं चलता, कहा। ए..ई.. नवरंगभाई! उसमें थे सही न, (सम्प्रदाय में थे न) इसलिए वे माने (नहीं ऐसा नहीं।) इसमें आ गये, इसलिए यह मानते हैं - ऐसा नहीं। यहाँ तो सत्य हो, वह मानेंगे। ज्ञानचन्दजी! सम्यग्दर्शन / स्वरूप की दृष्टि हुई, तब उसके साथ भावश्रुतज्ञान हुआ, भावश्रुतज्ञान। भावश्रुतज्ञान के दो भेद, भावश्रुतज्ञान-प्रमाण अवयवी है,



उसका अवयव वह भेद है। निश्चय और व्यवहार उसके अवयव हैं तो उसे व्यवहारनय होता है। अज्ञानी को व्यवहारनय कैसा ? और उस व्यवहारनय का विषय भगवान की मूर्ति आदि उसे होते हैं। नवरंगभाई ! है व्यवहार, है शुभराग, उसका विषय परन्तु उस निश्चयवाले को वह होता है। पूर्ण न हो, तब तक वह होता है, उसे तुम उड़ा डालो - ऐसा नहीं चलता, कहा।

यहाँ ऐसा कहते हैं, यदि बन्ध ही नहीं तो फिर छूटने का उपाय भी नहीं। इसलिए बन्ध है, ऐसा जानना चाहिए और उसके छूटने का उपाय है, वह भी इसे जानना चाहिए। यह विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)